IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 30, Issue 1, Series 1 (January, 2025) 73-82
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई का भारतीय समाज एवं राजनैतिक परिदृश्य में योगदान का ऐतिहासिक अध्ययन

नीरु जारवाल
सहायक आचार्य, इतिहास, भारतीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किशनगढ़ बास, जिला खैरथल तिजारा, राजस्थान

शोध सार संक्षेप

रानी लक्ष्मीबाई एक महान योद्धा थी। उनकी वीरता के वारे में कहीं कोई विवाद नहीं है। इस पर सभी भारतीय एवं अंग्रेज एक मत थे। रणक्षेत्र में उनकी तलवार विद्युत्वेग से प्रहार करती थी। अत्यंत संकट की स्थिति में, वह मुँह में लगाम दबाकर, दोनों हाथों से तलवार चलाकर एवं शत्रुओं का संहार कर शत्रुओं को हतप्रद कर देती थी। भाँडेर के द्वन्द्व युद्ध में लेफ्टीनेन्ट बॉकर मरते–मरते बचा था। उसका भाग्य अच्छा था कि रानी की तलवार का वार उसके कूल्हे पर टगी रिवाल्वर पर पड़ा, अन्यथा उसके दो टुकडे हो जाते। इस सत्य को स्वयं बॉकर ने स्वीकार किया था। इसकी पुष्टि ह्यूरोज के विवरण से भी होती है। कालपी के युद्ध में भी रानी लक्ष्मीबाई ने ब्रिग्रेडियर स्टुअर्ट को धूल चटा दी थी। रानी ने द्वन्द्व युद्ध में स्टुअर्ट के घोड़े को मार गिराया था, जिससे स्टुअर्ट जमीन पर गिर पड़ा था। इसकी पुष्टि भी ह्यूरोज के विवरण से होती है। ग्वालियर के युद्ध में भी उन्होंने तलवार के जौहर दिखाये और अन्ततः वीरांगना की भाँति युद्ध के मैदान में वीरगति प्राप्त की। निसंदेह, वह भारतीय इतिहास की महानतम वीरांगना थी।

रानी लक्ष्मीबाई एक महान सेनापति थी। उन्होंने अनेक अवसरों पर सेनापतित्व का परिचय दिया। झाँसी में अंग्रेजों के समक्ष, उन्होंने जैसी दुर्जेय चुनौती प्रस्तुत की। वह उनके श्रेष्ठ सेनापतित्व का परिचायक है। उल्लेखनीय है कि 1857 के विद्रोही नेता अंग्रेजों से युद्ध करते समय बहुत शीघ्र ही पराजित हो जाते थे, एक मात्र लक्ष्मीबाई ही थी जिन्होंने अंग्रेजों के समक्ष सदैव एक दुर्जेय चुनौती प्रस्तुत की। कोंच के युद्ध में तात्या टोपे की नेतृत्वविहीन सेना की रक्षा की, उनकी प्रशंसा करने के लिये अंग्रेजों को बाध्य होना पड़ा। इस अवसर पर रानी के श्रेष्ठ सेनापति की प्रशंसा ह्यूरोज तथा के एवं मैल्लेसन ने भी की। के एवं मैल्लेसन के शब्दों में–"उन्होंने जिस तरह से पीछे हटने के कार्य को संचालित किया था; उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती।" इस शोध पत्र में झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई का भारतीय समाज एवं राजनैतिक परिदृश्य में योगदान का ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है ।

मुख्य बिन्दु :– वीरांगना लक्ष्मीबाई, भारतीय सामाजिक दशा, रजवाड़े, जमींदार वर्ग, कृषक वर्ग, पूँजीपति वर्ग, मजदूर वर्ग, मध्यम वर्ग, राजनैतिक परिदृश्य, आर्थिक परिदृश्य एवं निष्कर्ष ।

प्रारंभिक जीवन : –

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की नायिका झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, जिन्होंने अपनी अंतिम सांस तक अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध जारी रखा, उनका जन्म 19 नवंबर 1835 को वाराणसी में हुआ था। मराठी ब्राह्मण परिवार से संबंध रखने वाली लक्ष्मी बाई का असली नाम मणिकर्णिका था, लेकिन हर कोई उन्हें मनु कहता था। उनके पिता मोरोपंत तांबे ने पेशवा, बिठूर के राज्य सभा में काम किया। जब उसकी माँ चार साल की थी तब मनु की मृत्यु हो गई। पेशवा ने मनु को अपनी बेटी की तरह पाला, उसने उसे छबीली कहा। मणिकर्णिका की शिक्षा घर पर पूरी हुई। राज सभा में पिता के प्रभाव के कारण, मनु को अन्य महिलाओं से अधिक खुला माहौल मिला। तात्या टोपे, जो पेशवा के बेटे को प्रशिक्षित करते थे, वे भी मनु के गुरु और प्रशिक्षक बन गए। बचपन में, मनु ने घुड़सवारी, निशानेबाजी, आत्मरक्षा में प्रशिक्षण प्राप्त किया।

मणिकर्णिका का विवाह झाँसी के महाराजा गंगाधर राव से 1850 में 15 वर्ष की आयु में हुआ था। केवल एक वर्ष बाद उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। लेकिन उस बच्चे की चार महीने बाद मौत हो गई। राजा गंगाधर राव को इतना गहरा आघात लगा कि वह फिर से उबर नहीं पाए और 21 नवंबर 1853 को उनकी मृत्यु हो गई। हालांकि महारानी की मृत्यु रानी के लिए असहनीय थी, लेकिन वह घबराई नहीं, उन्होंने अपना विवेक नहीं खोया। अपने जीवनकाल के दौरान, राजा गंगाधर राव ने अपने परिवार के बेटे दामोदर राव को दत्तक पुत्र मानते हुए ब्रिटिश सरकार को सूचित किया था। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार ने दत्तक पुत्र को अस्वीकार कर दिया।

27 फरवरी 1854 को लॉर्ड डलहौज़ी ने दत्तक की नीति के तहत दत्तक पुत्र दामोदर राव को गोद लेने से इनकार कर दिया और झांसी के अंग्रेजी राज्य में विलय की घोषणा की। यह जानकारी मिलते ही रानी के मुंह से यह वाक्य निकल गया, मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी। यहीं पर भारत की पहली स्वतंत्रता क्रांति के बीज फैले थे।

उद्देश्य :–

1. महारानी लक्ष्मीबाई के सामाजिक योगदान का अध्ययन करना ।

2. महारानी लक्ष्मीबाई की आर्थिक व राजनीतिक कार्यों की जानकारी प्रदान करना ।

परिकल्पना :–

1. महारानी लक्ष्मीबाई का अदभुत योगदान सामाजिक उत्थान में रहा ।

2. महारानी लक्ष्मीबाई ने राजनीतिक व आर्थिक विकास के कार्य किए ।

शोध विधितन्त्र :–

इस शोध के अध्ययन में ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है । यह शोध ऐतिहासिक उपागम पर आधारित है । इस लेख में द्वितीयक प्रकार के आकड़ो को समाचार पत्र ,अभिलेख एवं विभन्न इतिहास के स्रोतों प्राप्त किया गया है ।

वीरांगना लक्ष्मीबाई :–

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर किसी भी चरित्र का मूल्यांकन उसके कार्यो के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। तदनुरूप, रानी लक्ष्मीबाई द्वारा विभिन्न रूपों में किये गये कार्यों के आलोचनात्मक परीक्षण के आधार पर उनके चरित्र का निर्धारण एवं मूल्यांकन किया जा सकता है –

रानी लक्ष्मीबाई को व्यक्ति के रूप में आदर्श माना जा सकता हैं। वह एक अच्छी पुत्री, कर्तव्यनिष्ठ पत्नी एवं ममतामयी माता थी। पुत्री के रूप में उन्होंने अपने पिता मोरोपन्त ताम्बे एवं अपनी विमाता चिमाबाई को सर्वदा सन्तुष्ट रखा। लक्ष्मीबाई के विवाह के पश्चात महारानी के पिता झाँसी में ही रहे तथा गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात वे रानी के घनिष्ठ सम्पर्क में रहे। पत्नी के रूप में भी रानी का चरित्र ग्रहणीय था। उन्होंने विवाह के पश्चात स्वयं को पति के अनुरूप ढाल लिया था। विवाह के पश्चात, महाराज की इच्छा के अनुरूप वह प्रायः महल में ही रहती थी तथा पर्दा प्रथा का पालन करती थी, उन्होंने विवाह पूर्व की गतिविधियों पर विराम लग गया था जो वह बिठूर में स्वछन्द रूप से सम्पन्न करती थी जैसे घुड़सवारी आदि। वह एक ममतामयी माता थी। दामोदर राव के दत्तक पुत्र होने के बावजूद रानी ने उसका घ्यान सगे पुत्र से भी अधिक रक्खा। यदि वह चाहती तो दामोदर राव की देखभाल किसी विश्वासपात्र को भी सौंप सकती थी, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने दामोदर राव को कलेजे के टुकड़े की भाँति जहाँ तक सम्भव हुआ, सदैव अपने साथ रक्खा। रानी का दामोदर राव पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। यही कारण था कि दामोदर राव कल्पना से रानी का एक चित्र बनाकर जीवन भर उसकी पूजा करते रहे। इस प्रकार रानी, निसंदेह, व्यक्ति के रूप में आदर्श थीं।

महारानी बहुत बुद्धिमान, तर्कशील और अपना पक्ष प्रस्तुत करने में अत्यधिक कुशल थी। अनेक अवसरों पर उनकी बुद्धिमत्ता का लोहा सभी ने माना। लार्ड डलहौजी द्वारा झाँसी राज्य के विलय के पश्चात झाँसी की पुर्नप्राप्ति हेतु

रानी द्वारा किये गये पत्र व्यवहार से उनकी बुद्धिमत्ता निर्विवाद सिद्ध होती है। उन्होंने अधिकांश पत्र स्वयं डिक्टेट कर अंग्रेजों को भेजे थे। इन पत्रों में उनका तार्किक दृष्टिकोण देखते ही बनता हैं। यही कारण हैं कि रानी के 16 फरवरी 1854 के पत्र से प्रभावित होकर बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेन्ट मैल्कम ने झाँसी के विलय के विरूद्ध अपनी टिप्पणी गवर्नर जनरल डलहौजी को भेजी जबकि इसके पहले वह झाँसी के विलय के पक्ष में अपनी टिप्पणी गवर्नर जनरल को भेज चुका था। रानी ने अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिये डलहौजी को अनेक पत्र भेजे और जब उन्हें भारत में ब्रिटिश सरकार से कोई आशा न रही, तब उन्होंने लन्दन में भी अपना पक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु, साम्राज्य विस्तार के तात्कालिक लाभ को देखकर, अंग्रेजों ने रानी की एक न सुनी। तहमानकर ने उचित ही लिखा कि "लार्ड डलहौजी के निर्णय के विरूद्ध अपना वाकयुद्ध इस विलक्षण रानी ने अकेले ही लड़ा और यदि झाँसी के मामले में तथ्यों एवं तर्को के आधार पर निर्णय दिया जाता तो रानी अवश्य ही विजयी होती।" इसके अलावा कालपी के युद्ध में विद्रोहियों की निर्णायक पराजय के पश्चात, जब रानी ने ग्वालियर पर अधिकार की योजना बनाकर उसे कार्यान्वित कर दिया, तब उनके इस बुद्धिमत्तापूर्ण कदम की प्रशंसा सबको करनी पड़ी तथा सभी ने उनकी बुद्धि का लोहा माना।

रानी लक्ष्मीबाई एक महान शासिका एवं संगठनकर्ता थीं। 12 जून 1857 को झाँसी का शासन भार सभांलते ही उन्होंने एक पल गवायें बिना ही प्रजा से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने तथा झाँसी की सुरक्षा करने के लिये उद्योग प्रारम्भकिया। उन्होंने विभिन्न त्यौहारों में जनता के साथ भागीदारी की तथा किसानों का एक वर्ष का लगान माफ कर दिया। उन्होंने आर्थिक प्रगति के लिये चार उद्योग केन्द्र भी स्थापित किये। कुछ ही समय में रानी ने झाँसी के लोगो को एकता के सूत्र में पिरो दिया। वहीं दूसरी ओर रानी ने झाँसी की सुरक्षा हेतु दिन–रात कार्य करवाया। इन सबसे बढ़कर, उन्होंने झाँसीवासियों को स्वतंत्रता की रक्षा के लिये मरना सिखा दिया इसकी पुष्टि ह्यूरोज के विवरण से भी होती है। इस प्रकार रानी ने अपनी प्रशासनिक कुशलता के द्वारा ही अंग्रेजों के समक्ष दुर्जेय चुनौती प्रस्तुत की थी। निसंदेह, वह एक महान शासिका एवं संगठनकर्ता थी।

कालपी के युद्ध में रानी लक्ष्मीबाई ने बिग्रेडियर स्टुअर्ट की ब्रिगेड पर जिस प्रकार से भयंकर आक्रमण कर उसे ध्वस्त कर दिया था वह उनके असाधारण सेनापतित्व का परिचायक है। स्टुअर्ट के सौभाग्य से उस समय ह्यूरोज की उष्ट्रवाहिनी ने ब्रिटिशों के सम्मान की रक्षा की। रानी के प्रबलतम शत्रु सर ह्यूरोज ने स्वयं महान सेनापति के रूप में रानी के गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा कि "विद्रोहियों में मिलिट्री चतुरता मात्र रानी में ही है। फिर मनुष्य को प्रेरणा देकर युद्ध में मरना सिर्फ वही सिखा सकती है। शत्रु के हिसाब से वही एक मेरे समकक्ष है। कैसा अदम्य मनोबल है उसका, और कैसा तो युद्ध की योजना बनाने की चतुरता और ज्ञान है उसके पास ।"

यद्यपि रानी विद्रोहियों में सर्वश्रेष्ठ सेनापति थी, तथापि उनको कालपी के युद्ध में प्रधान सेनापति नहीं बनाया गया। सम्भवतः इसका कारण उनका स्त्री होना था। राव साहब हो या बाँदा के नवाब थे तो पुरूष ही। अतः पुरुष प्रधान समाज में रानी को प्रधान सेनापति स्वीकारना, उनके अहम को स्वीकार न था। यद्यपि प्रारम्भ में यह जिम्मेदारों रानी को सौंपी गई थी, परन्तु बाद में यह निर्णय बदल दिया गया। उल्लेखनीय है कि ह्यूरोज ने कालपी के युद्ध में विद्रोहियों की पराजय का प्रमुख कारण राव साहब का प्रधान सेनापति होना माना था। इसी प्रकार ग्वालियर में भी पहले रानी की उपेक्षा की गई और जब अंग्रेजी सेनायें ग्वालियर को चारों ओर से धेरने लगीं, तब राव साहब, तात्या टोपे आदि ने ग्वालियर की रक्षा का भार अंतिम समय में रानी को सौंप दिया। परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। विद्रोहियों की पराजय का यह एक प्रमुख कारण बना।

रानी लक्ष्मीबाई दूरदर्शी थी। उन्होंने झाँसी में शासन भार संभालते ही व्यापक तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी थी तथा पेशवा नाना साहब और तात्या टोपे से सम्पर्क स्थापित कर लिये थे। इसके अलावा उन्होंने बुन्देलखण्ड में विद्रोह के प्रसार हेतु बुन्देलखण्ड के अनेक राजाओं के पास अपने गुप्तचर भेजे। यह कार्य रानी की दूरदर्शिता को दिखातें है। इसी प्रकार, कालपी में विद्रोहियों की निर्णायक पराजय के पश्चात, ग्वालियर पर अधिकार का निर्णय रानी की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का परिचायक था। इस निर्णय की सराहना ह्यूरोज को भी करनी पड़ी। ग्वालियर पर अधिकार के पश्चात, रानी ने राव साहब और तात्या को सामरिक तैयारी का परामर्श दिया था। यह परामर्श भी दूरदर्शितापूर्ण था। परन्तु उन्होंने रानी की एक न सुनी, जिसकी विद्रोहियों को भारी कीमत चुकानी पड़ी।

इस प्रकार, रानी लक्ष्मीबाई बहुमुखी प्रतिभा की धनी थी। वह महान वीरांगना, महान सेनापति, महानशासिका एवं संगठनकर्ता तथा कुशल कूटनीतिज्ञ, बुद्धिमान एवं दूरदर्शी थी। उन्होंने अपनी इस बहुमुखी प्रतिभा का 1857 के विद्रोह में भरपूर उपयोग किया। अंग्रेजों की उस समय की निर्विवाद श्रेष्ठता को जानते हुये भी उन्होंने अंग्रेजों के अत्याचारी एवं अन्यायी शासन को समाप्त करने के लिये न केवल युद्ध का बीड़ा उठाया, बल्कि अनेक बार अंग्रेजों के छक्के छुडायें। अन्ततः स्वराज्य की प्राप्ति हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया ।

भारतीय समाज एवं राजनैतिक परिदृश्य में महारानी लक्ष्मीबाई का योगदान :–

उपनिवेशिक शासन का प्रभाव भारत की राजनीति तक सीमित नहीं रहा, उसने इस देश के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया। जहाँ तक सामाजिक जीवन का प्रश्न है, तत्कालीन भारतीय समाज धर्म, परम्परा तथा जातिप्रणाली की विविधताओं से ग्रसित था। अंग्रेज इन विविधताओं को उनकी समस्त जटिलताओं के साथ कायम रखना चाहते थे। वस्तुतः ऐसा करके ही वे इस देश में अपने शासन को स्थायित्व प्रदान कर सकते थे। इसलिए उन्होंने सामान्य रूप से सामाजिक क्षेत्र में 'हस्तक्षेप' की नीति को ही अपनाया। परन्तु इन विविधताओं के सन्दर्भ में भी एकता के दो तत्वों को अवलोकित किया जा सकता था। ये तत्व थे ब्राह्मण और शूद्र। देश के विभिन्न भागों में कृषि व्यापार में रत बिरादरियों के स्वरूप में अन्तर हो सकता था, परन्तु पुरोहिताई करने वाले ब्राह्मण और सेवा करने वाले शूद्र की स्थिति में कोई अन्तर नहीं रहा। काल और क्षेत्र से उनकी स्थिति अप्रभावित रही। 2 यह ठीक है कि पुरोहिताई का कार्य राजनीतिक सत्ता को प्रभावित नहीं करता, किन्तु जनमानस का मार्ग दर्शन करने में उसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। ब्राह्मण की ही भाँति शूद्रों का भी समूचे भारत में एक ही प्रकार का व्यवसाय था वे जमीदारों को अपना श्रम बेचते थे, उनके खेतों में काम करते थे तथा उन सभी कर्तव्यों का पालन करते थे जिसकी उनसे अपेक्षा की जाती थी। सत्य यह है कि वे भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी थे। उनकी अनुपस्थिति में यहाँ की किसी भी प्रणाली का उत्पादन सम्भव नहीं था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज के बहुरंगी ढाँचे में एकता के तत्वों की रचना परावलम्बी ब्राह्मण और उत्पादनशील शूद्रों के द्वारा ही हुई है। यह भी एक अद्भुत बात है कि आरम्भ में अंग्रेजों ने

जिस नौकरशाही की रचना की थी, उसमें ब्राह्मणों की संख्या सबसे अधिक थी परन्तु बंगाल और मद्रास में उन्होंने जो सबसे पहली भारतीय सेना खड़ी की थी, उसमें निम्न स्तर पर अनुसूचित जातियों के सदस्यों की बहुतायत थी।

अंग्रेजी शासन के दौरान भारतीय समाज में आमूल–चूल परिवर्तन हुए। पुराने आर्थिक राजनीतिक सामाजिक वर्ग छिन्न–भिन्न हो गए तथा नयी आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का उदय हुआ।

(1) भारतीय सामाजिक दशा :

तत्कालीन भारतीय सामाजिक दशा की सही जानकारी के लिए वर्गो का निर्धारण समाज की उत्पादन व्यवस्था के आधर पर होता है। इसलिए यदि सामाजिक वर्गो को आर्थिक वर्गो की संज्ञा प्रदान की जाए, तो वह अनुचित न होगा। 4 वस्तुतः उत्पादन–व्यवस्था के आधार पर ही वर्ग–सम्बन्धों की रचना होती है और जब एक उत्पादन–व्यवस्था टूटती है तो साथ में उस पर आधारित सामाजिक एवं आर्थिक वर्ग भी टूट जाते हैं। नई उत्पादन व्यवस्था के फलस्वरूप नए उत्पादन सम्बन्धों एवं नए सामाजिक–आर्थिक वर्गो का उदय होता है। 5 अंग्रजी शासन ने इस देश में नई उत्पादन–व्यवस्था को जन्म दिया था जिसके परिणामस्वरूप कुछ पुराने वर्ग नष्ट हुए, जैसे हस्तशिल्पी वर्ग और कुछ नए वर्ग पैदा हुए, जैसे सूदखोर वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग, मध्यम वर्ग और मजदूर वर्ग। यह ठीक है कि देश के विभिन्न भागों में नए वर्गों के उदय की प्रक्रिया एक जैसी नहीं थी, परन्तु इन वर्गों ने अस्तित्व में आने के बाद जो भूमिका अदा की. उसने समूचे भारत को प्रभावित किया। औपनिवेशिक शासन के दौरान जिन वर्गों की प्रमुखता रही, वे थे रजवाडे, जमींदार, कृषक, मजदूर वर्ग था। यहाँ इन वर्गों पर उपनिवेशवाद के प्रभाव एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इनकी भूमिका की विवेचना अपेक्षित हैं।

रजवाड़े :

ब्रिटिश शासन के दौरान लगभग एक–तिहाई भारत पर देशी राजाओं का शासन था। यद्यपि इन रियासतों के शासकों को राजा कहा जाता था, उनकी प्रजा उन्हें 'अन्नदाता' कहकर सम्बोधित करती थी तथा उन्हें दैवी गुणों से सम्पन्न मानती थी, तथापि वास्तविकता यह थी कि वे ब्रिटिश सरकार की कठपुतली से अधिक कुछ नहीं थे। उनके पास न तो राजनीतिक शक्ति थी और न सैनिक। आर्थिक एवं औधोगिक मामलों में इनकी रियासतें सेठों के प्रभाव में थी। अपनी इस स्थिति से दुःखी होकर कुछ असन्तुष्ट राजाओं ने 1857 में विद्रोह का झण्डा बुलन्द भी किया था, परन्तु उनका यह संघर्ष राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण नहीं कर सका। इस संघर्ष ने देशी नरेशों तथा ब्रिटिश शासन दोनों के दृष्टिकोणों को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। 1858 की घोषणा के अनुसार महारानी विक्टोरिया ने इन्हें हानिरहित मानकर यह ऐलान किया कि इनके अधिकार, सम्मान एवं प्रतिष्ठा की रक्षा उसी प्रकार से की जायेगी जैसे कि स्वंय महारानी के अधिकार एवं सम्मान की रक्षा की जाती है। स्पष्टतः इस घोषणा का उद्देश्य उन शक्तियों के विकास को अवरोधित करना था जो राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थी और इस काम में देश के सामन्ती एवं प्रतिक्रियावादी राजाओं से बढ़कर और कौन दूसरा वफादार सहयोगी हो सकता था।

राजा महाराजाओं पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव कई प्रकार से पड़ा। प्रथम, उन्हें शक्तिहीन एवं निष्प्रभावी बना दिया गया। दूसरे रियासतों की अर्थव्यवस्था स्थानीय न रह सकी और वह राष्ट्रीय अर्थ–व्यवस्था का अंग बन गई तथा इस प्रकार रियासतें भी ब्रिटिश शोषण प्रणाली के प्रभाव से अछूती न रह सकीं। तीसरे कुछ राजे महाराजे उद्योग–धन्धों के क्षेत्र में भी उत्तर आए और नवोदित पूँजीपति वर्ग में शामिल हो गए।

इन राजा–महाराजाओं के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि जैसे–जैसे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का जनाधार व्यापक होता गया उनकी ब्रिटिश भक्ति भी उसी मात्रा में बढ़ती गई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इनकी सक्रिय सहानुभूत्ति अंग्रेजों के साथ थी। ब्रिटिश शासन ने भी इन्हें पूर्ण संरक्षण प्रदान किया। अंग्रेजों ने जहाँ पूँजीवादी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपने देश में सामन्ती व्यवस्था का उन्मूलन करना आवश्यक समझा था, वहाँ उन्होंने भारत में औपनिवेशिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए तथा स्वतंत्रता की लहर को रोकने के लिए सामन्ती तत्वों से गठजोड़ करना आवश्यक समझा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजे–महाराजाओं के संदर्भ में ब्रिटिश शासन की भूमिका एक बैसाखी की थीः ब्रिटिश शासन के हट जाने के बाद यह बैसाखी भी टूट गई और राजा–महाराजे भी लड़खड़ा कर नीचे गिर पड़े और अन्ततोगत्वा मिट गए।

जमींदार वर्ग :

अंग्रेजों के आने के पूर्व भूमि पर निजी स्वामित्व नहीं था गाँव की समूची भूमि ग्राम समाज की थी। गाँव एक ऐसा समुदाय था जो आत्म निर्भर था, अपने में संतुष्ट था जिसकी सामाजिक संरचना जातिगत एवं अपरिवर्तनशील थी। अंग्रेजों ने भारत के आत्म निर्भर ग्राम समुदायों को नष्ट किया। उनके शासन काल में मुख्य परिवर्तन भूमि के स्वामित्व के क्षेत्र में हुआ। गाँव में अब तक प्रचलित सामूहिक स्वामित्व को समाप्त करके निजी स्वामित्व की प्रणाली आरम्भ की गई। 1793 में लार्ड कार्नवालिस के समय में स्थायी बन्दोबस्त किया गया जिसके फलस्यरूप देश के जमींदारों के नये वर्ग का उदय हुआ। इस वर्ग को पैदा करने में अंग्रेजो के दो उद्देश्य थेः प्रथम, जमींदारों को सरकार

और किसानों के बीच में बिचौलिया बनाकर लगान आसानी से वसूला जा सकता था। दूसरे जमींदारों के रूप में एक ऐसा भरोसेमंद, राजभक्त वर्ग खड़ा किया जा सकता था जो जहाँ अपने अधीन किसानों को नियंत्रित कर सकता था, वहाँ वह दूसरी ओर ब्रिटिश शासन को अपनी वफादारी अर्पित कर राष्ट्रीय चेतना के विकास को अवरोधित कर सकता था। 10 कहने की आवश्यकता नहीं कि जमीदारों के रूप में ब्रिटिश शासन को एक देसी सामाजिक आधार प्राप्त हुआ।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति जमीदारों का दृष्टिकोण भी वही था जो राजा–महाराजाओं का था। जमीदारों का यह वर्ग जहाँ अंग्रेज भक्त था, और इसलिए राष्ट्रद्रोही भी था, वहाँ उन्होंने कृषि व्यवस्था के विकास में कोई योगदान न देकर यह भी प्रमाणित कर दिया कि उनका वर्ग पूर्णतयाः अनुपयोगी था।

कृषक वर्ग :

अंग्रेजी शासन के पहले, जैसा कहा जा चुका है, ग्राम समुदाय के पास ही भूमि का स्वामित्व था। किसान आत्म निर्भर ग्राम समुदाय के लिए जमीन जोतता था, सारे गाँव के लिए फसल उगाता था तथा उस पर लगान का कोई बोझ भी नहीं था। अंग्रेजों ने जमींदारी प्रथा आरम्भ की जिसके फलस्वरूप दो प्रकार के किसानों का जन्म हुआ–बटाईदार किसान तथा रैपतवाड़ी किसान। बटाईदार किसान बटाई पर जमींदारों से जमीन लेते थे तथा उन्हें जमींदार को इसके लिए एक निश्चित लगान देना होता था। रैपतवाड़ी किसान भी जमींदार को लगान देने के लिए बाध्य थे। यह लगान इतना अधिक होता था जो किसान की सामर्थ्य से बाहर था। जमींदार किसान से न केवल लगान वसूल करते थे, वे उनसे विभिन्न प्रकार की गैर–कानूनी एवं अन्यायपूर्ण रकमें भी वसूल करते थे, इन गैर–कानूनी वसूलयाबियों को उन्होंने कुछ नाम भी दे रखे थे। यदि जमींदार को मोटर खरीदनी है, तो मोटर खरीदने के लिए जो रकम किसान से वसूली जाती थी, उसे मोटराना का नाम दिया गया था। इसी प्रकार हाथी खरीदने के लिए जो गैरकानूनी बसूलयाबी होती थी, उसे हथौना कहते थे। इन कानूनी एवं गैर–कानूनी करों का भुगतान करने के लिए किसानों को सूदखोरों से ऋण लेना पड़ता था और इस प्रकार उनके लिए कभी न खत्म होने वाला मुसीबतों का सिलसिला शुरू होता था। इनके परिणापस्वरूप किसान को अपनी जोत से बेदखल होना पड़ता था तथा कर्जे को चुकाने के लिए उसे बेगार भी करनी पड़ती थी। स्पष्टतः इस संदर्भ में खेती की उन्नति नहीं हो सकती थी। किसान की स्थिति भी दिन पर दिन खराब होती गई। जमीन किसानों के हाथ से निकलकर उन लोगों के हाथ में चली गई जिनका खेती से कोई दूर का भी सम्बंध नहीं था। इस प्रकार भूमि–हीन किसानों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। 12 इस पृष्ठभूमि में यदि किसान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समर्थक बन गए तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। 1850 के बाद देश में किसान विद्रोहों के अनेक उदाहरण देखने को मिलते है। 1855 में संथाल विद्रोह हुआ। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति सहानुभूति की भावना सबसे पहले उन किसानों में आई जिनका सम्बन्ध रैपतवाड़ी प्रथा के साथ था। ऐसा इसलिए था क्योंकि इन किसानों को लगान सीधा सरकार को देना होता था, अतः वे अंग्रेजों के नंगे जुल्मों का शिकार थे। इसके विपरीत बटाईदार किसानों का मुख्य संघर्ष जमींदारों के साथ था। अल्प समय में ही दोनों प्रकार के किसान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि जमींदार, सूदखोर और व्यापारी आदि उन सब लोगो को जो उनकी मुसीबतों के लिए जिम्मेदार थे, अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त था। 13

पूँजीपति वर्ग :

भारत में पूँजीवादी उत्पादन की पद्धति का आरम्भ किसी सामाजिक क्रान्ति के माध्यम से नहीं हुआ जैसा यूरोप में हुआ था। वस्तुतः उसे भारत में अंग्रेजों ने ऊपर से अपने हित में आरोपित किया था। यहाँ आने के बाद उन्होंने दलालों और बिचौलियों के एक वर्ग को जन्म दिया जिससे पहले से चली आ रहीं व्यापार करने वाली बिरादरियों को बड़ी आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ा। ये दलाल बाहर से पक्का माल आयात करते थे तथा कच्चे माल का निर्यात करते थे। इस काम में ब्रिटिश पूँजीपतियों की महत्वपूर्ण सहभागिता थी। व्यापार के इस नये रूप के फलस्वरूप गाँवों की आत्म निर्भरता का लोप हो गया, यातायात के साधनों का विकास हुआ जिससे ग्रामों का देश के विभिन्न भागों के साथ सम्पर्क स्थापित हो गया। परन्तु इससे ग्रामीण जनता का शोषण भी और अधिक उग्र हो गया। चूँकि ये नये व्यापारी केवल दलाल और बिचौलिए थे इसलिए उनकी पूँजी से कृषि उत्पादन की वृद्धि में तो कोई सहायता नहीं मिली, उनकी ऋण–ग्रस्तता की वृद्धि में वह अवश्य सहायक हुई। कालान्तर में ये दलाल ब्रिटिश पूँजीपतियों के कनिष्ठ साझीदार बन गए और धीरे–धीरे इन्होंने स्वतंत्र रूप से अपने उद्योगों की स्थापना की। 14 इस प्रकार भारतीय पूँजीपति वर्ग का उदय हुआ। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय पूँजीपति वर्ग ब्रिटिश शासन का आत्मज है। अपने जन्म के थोडे समय के बाद ही भारतीय पूँजीपतियों के अंग्रेजी शासन के साथ अन्तर–विरोध उभर कर सामने आने लगे। नवोदित भारतीय पूँजीपतियों ने नवजात उद्योगों में पूँजी लगाना आरम्भ कर दिया। अपने नवजात उद्योगों को विकसित करने के लिए इन्हें सरकार के संरक्षण की आवश्यकता थी। औपनिवेशिक शासकों ने संरक्षण का आश्वासन तो दिया, पर पूरा नहीं किया। इसके विपरीत 1856 में भारतीय उत्पादों पर 31 प्रतिशत उत्पाद शुल्क लगा दिया गया जिससे भारतीय माल विदेशी माल से टक्कर न ले सके। यही नहीं, विदेशी माल पर आयात कर नहीं लगाया गया, जबकि भारतीय उद्योगपति इसकी माँग कर रहे थे। यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि भारतीय उद्योगों को मशीनों तथा तकनीकी जानकारी इंग्लैण्ड से ही प्राप्त होती थी। इसलिए ब्रिटिश पूँजीपतियों के साथ अन्तर्विरोध के बावजूद भारतीय उद्योग ब्रिटिश पूँजी के नियंत्रण

में थे। औपनिवेशिक शासकों ने इस नियंत्रण का भरपूर लाभ उठाकर जो उद्योग सम्बन्धी नीति निर्मित की उसके अनुसार यहाँ भारी उद्योगों का निर्माण नहीं होने दिया तथा भारतीय उद्योग ब्रिटिश उद्योगों के मुकाबले में खड़े न हो सके इसलिए उन्हें उस कच्चे माल के प्रयोग से वंचित किया गया जिसकी ब्रिटिश उद्योगों को आवश्यकता थी।

सरकार की इस उद्योग विरोधी नीति से दुःखी होकर भारतीय उद्योगपतियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अपना भरपूर समर्थन दिया ।

मजदूर वर्ग :

सामान्यतः मजदूर वर्ग का उदय औद्योगीकरण की प्रक्रिया के साथ जुड़ा हुआ है। परन्तु भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया के आरम्भ होने के पूर्व अंग्रेजों ने चाय, कॉफी तथा रबड़ के बागानों में पूँजी निवेश करना शुरू कर दिया था। इनके अतिरिक्त रेल निर्माण की प्रक्रिया भी फैक्टरी और कारखानों की स्थापना के पूर्व ही आरम्भ हो चुकी थी। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत में मजदूर वर्ग का उदय लगभग 1850 के बाद हुआ जब अंग्रेजों ने चाय, कॉफी, रबड़ के बागानों में धन लगाना आरम्भ कर दिया। इन बागानों में काम करने वाले मजदूरों की स्थिति बंधुआ मजदूरों जैसी थी, उनकी दर्दनाक स्थिति की जानकारी इन्डिगो कमीशन की रिपोर्ट से प्राप्त की जा सकती है। 1850 के बाद देश में औद्योगीकरण का सिलसिला शुरू हुआ जो लगातार बढ़ता रहा, फलतः देश के बड़े नगरों में विभिन्न उद्योगों की स्थापना हुई और इसके परिणामस्वरूप कारखानों में काम करने वाले मजदूर वर्ग का जन्म हुआ। उस समय देश में बेरोजगारी इतनी अधिक थी कि जिस किसी को कहीं भी किसी भी दाम पर काम मिला, वह अपने को भाग्यशाली समझता था।

भारत के मजदूरों ने आरम्भ से ही दो मोर्चों पर संघर्ष किया है। एक ओर तो उसने विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध लड़ाई लड़ी है तो दूसरी ओर उसने देशी पूँजीपतियों के खिलाफ संघर्ष किया है। पूँजीवाद के विरूद्ध संघर्ष ने उसे समाजवादी दृष्टिकोण प्रदान किया है तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने उसे साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण दिया था। 17

मध्यम वर्ग :

किसी भी सामाजिक संरचना में मध्यम वर्ग का निर्धारण सुगम नहीं है। औपनिवेशिक शासन में मध्यम वर्ग में तीन श्रेणियों के लोगों को शामिल किया जा सकता था

1. सरकारी कर्मचारी

2. पेशेवर लोग जैसे वकील, डाक्टर, अध्यापक, लेखक, पत्रकार आदि।

3. छोटे व्यापारी, कारीगर इत्यादि ।

ब्रिटिश शासन में जो प्रशासनिक व्यवस्था देश में उदित हुई उसके रांवालन के लिए सरकारी कर्मचारियों की आवश्यकता थी। ये कर्मचारी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करते थे। ये कर्मचारी रूप–रंग में तो भारतीय थे, किन्तु उनका मिजाज अंग्रेजी था। उन सब बातों से अरूचि थी जो भारतीय थी।

इनके विपरीत डाक्टरों, वकीलों, अध्यापकों, लेखकों, पत्रकारों, समाजसुधारकों का जो वर्ग उभर कर आया, उसकी शिक्षा–दीक्षा यद्यपि ब्रिटेन की उदारवादी दार्शनिक परम्परा में हुई थी तथापि उसकी जड़ें देश की जमीन में थीं।

वह भारत के पुरातनपंथी अतीत से छुटकारा पाना चाहते थे, परन्तु उसके उपरान्त देश में कैसी सामाजिक व्यवस्था हो, इस बारे में उनके दृष्टिकोण में कोई सुनिश्चितता नहीं थी।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि भारत में मध्यम वर्ग का जन्म ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद हुआ। चूँकि इस वर्ग के स्वरूप में एकरूपता नहीं थी इसलिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति इस वर्ग के दृष्टिकोण में भी एकरूपता का अभाव था।

प्रारम्भिक सेवाओं में कार्यरत अधिकारियों का दृष्टिकोण सामान्यतः भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पक्ष में नहीं था। उन्हें ब्रिटिश प्रशासन में सभी प्रकार की सुख–सुविधाएं प्राप्त थीं। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से वे अच्छी स्थिति में थे। इनका विश्वास था कि अंग्रेज मूलतः न्यायप्रिय है और भारत में उनका शासन भगवान की कृपा के कारण हुआ है।

इनके विपरीत मध्यम वर्ग में वे लोग भी थे जिन्हें डाक्टर, वकील, पत्रकार, अध्यापक आदि की श्रेणी में रखते है। ये राष्ट्रवाद की भावना से ओतप्रोत थे तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इनकी भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। जैसा कहा जा चुका है इनका राजनीतिक प्रशिक्षण ब्रिटेन की उदारवादी परम्परा में हुआ था। अतः आरम्भ में इस वर्ग के सदस्यों को

भी अंग्रेजों की लोकतंत्र एवं उदारवाद में आस्था व विश्वास था। परन्तु जब उस वर्ग के लोगों के भ्रम टूटे और उनका मोह भंग हुआ तो उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध देश की आजादी की लड़ाई में डटकर हिस्सा लिया। इस वर्ग के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि देश में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुधारों की जितनी भी माँगे समय–समय पर प्रस्तुत हुई, उनको संघर्ष का रूप देने में इसी वर्ग के लोगों का योगदान था। आधुनिक भारत के निर्माण में तथा इसे पुरानी रूढ़िवादी संस्कृति के दलदल से निकालकर उसे लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की दिशा में अग्रसर करने में इस वर्ग ने प्रमुख भूमिका अदा की है।

(2) राजनैतिक परिदृश्य :–

1857 का विद्रोह ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध देश का प्रथम सामूहिक प्रयास था। 1857 की घटनाओं ने भारतीय राजनीति को एक नया मोड़ दिया। उसने भारत में राष्ट्रीय चेतना का बीजारोपण किया और कालान्तर में यही चेतना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में उभरी।

1857 के विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया कि भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत होने लग गयी थी। सामान्यतः साम्राज्यवाद का तथा विशेष रूप से भारत के सन्दर्भ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उद्देश्य उपनिवेश की जनता का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक शोषण रहा था। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा जाता कि विदेशी राजनीतिक दासता के पंजो में जकड़ी किसी पराधीन भावना का संचार शोषक देश ही करता है। यद्यपि 1857 की क्रान्ति को विदेशी सरकार ने तलवार तथा शस्त्र बल से दबा लेने में सफलता प्राप्त कर ली थी, तथापि जिस स्वेच्छाचारितावाद की नीति से इसके पश्चात् ब्रिटिश सरकार भारत में अपना साम्राज्य सुदृढ़ करने में तुल गयी, उसकी प्रतिक्रिया यही हुई कि भारत में राष्ट्रवादी तत्व विकसित होने लगे और उनका मुख्य उद्देश्य देश को पराधीनता से मुक्त कराना था। परन्तु आवश्यकता इस बात की थी कि भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को सुसंगठित किया जाये। ब्रिटिश शासन भारत में इतनी सुदृढ़ता से स्थापित हो चुका था कि उसे उखाड़ फेंकने के लिए राष्ट्रीय एकता तथा संगठन से युक्त देशव्यापी संघर्ष को भी उतना ही अधिक सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाया जाये। भारत की आम जनता का विशाल भाग ऐसी राष्ट्रीयता तथा राजनीतिक चेतना से मुक्त नहीं था। अतः 1857 में जहाँ राजनीतिक तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास के कार्य–कलाप देश में विकसित होने लगे, वहाँ ब्रिटिश शासन के अत्याचार भी उसी गति से बढ़ने लगे। ब्रिटिश शासकों ने राष्ट्रीय चेतना तथा संघर्ष को दबाने में अपनी दमनकारी नीतियों को किसी भी प्रकार कम नहीं किया। इसी के फलस्वरूप भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विकास को भी साम्रगी प्राप्त होती गयी। ज्यों–ज्यों राष्ट्रीय चेतना में विकास होने लगा त्यों–त्यों ब्रिटिश शासकों ने देश की राष्ट्रीय एकता को विनष्ट करने के उद्देश्य से यहाँ की जनता में भेदभाव तथा विघटन उत्पन्न करने के साधनों को प्रोत्साहन देना शुरू किया, ताकि उनकी सत्ता बनी रहें।

1857 के विद्रोह के कारण अंग्रेज लोग भारतवासियों को शंका की दृष्टि से देखने लग गये थे। वाइसराय के लिए यह बात अस्वभाविक नहीं थी कि वह भारतवासियों को अशक्त बनाने में कोई कमी करता। उसने अपने शासन काल में 'शस्त्र विधेयक' पास करके ऐसा कानून बनाया जिसके अनुसार भारतवासियों को बिना सरकार की आज्ञा प्राप्त किये शस्त्र रखने का अधिकार नहीं रहा। परन्तु भारत में रहने वाले यूरोपीय व्यक्तियों पर यह कानून लागू नहीं होता था। इस प्रकार अंग्रेजों ने भारतवासियों को निशस्त्र कर दिया। साथ ही इससे सम्बद्ध जातीय भेदभाव की नीति के कारण भारतीय जनता का ब्रिटिश शासन के विरूद्ध प्रतिक्रिया दर्शाना स्वाभाविक था। 20 रानी लक्ष्मीबाई की दृष्टि में यह कानून भारतीयों का महान अपमान था, क्योंकि इसके द्वारा भारतीय जनता को स्वयं अपने ही देश में हीनतर स्तर का नागरिक बना दिया गया था।

इतिहास कुछ और होता, जिस प्रकार भारत में हिन्दू तथा मुसलमान साथ–साथ एक भारतीयता की भावना से रह रहे हैं उसी प्रकार वे भी रह सकते थे, परन्तु अंग्रेज भारत में भारतीय बनने के लिए नहीं आये थे। उनका जातीय अभिमान, शोषण नीति तथा दमनकारी शासन एक दुधारी तलवार के रूप में सिद्ध हुआ।

सन् 1857 के अन्त तक भारत में राष्ट्रीयता की चेतना जागृत हो चुकी थी, परन्तु अभी उनमें सक्रियता का अभाव था, इसे स्वतंत्रता संग्राम का रूप प्राप्त नहीं हो पाया था। कोई भी संघर्ष बिना सुसंगठित प्रयास के सफल नहीं हो सकता। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए राष्ट्रीय चेतना को सुसंगठित करने के प्रयासों में महारानी लक्ष्मीबाई द्वारा किये गए प्रयास प्रथम कदम थे। रानी लक्ष्मीबाई ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को सुसंगठित रूप में संचालित करने की प्रेरणा दी। अतः रानी लक्ष्मीवाई को यदि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रथम सक्रिय प्रणेता कहा जाए तो यह सर्वथा उपयुक्त होगा।

(3) आर्थिक परिदृश्य :

भारत की आर्थिक स्थिति पर जब भी विचार हुए, वह स्वभावतः मुगल शासकों से अंग्रेजों की तुलना करता था। इस तरह की विवेचना में बहुधा यह कहा जाता था कि मुगल शासन निरंकुश था जबकि अंग्रेजों ने यहाँ जनतंत्र की स्थापना की थी, अतः मुगल शासन की अपेक्षा वह अधिक श्रेष्ठ था। 23 परन्तु इन दोनों के बीच की गई कोई भी तुलना

इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकती थी कि पहले भारत की सम्पदा भारत में ही रहती थी किन्तु वह अब भारत से बाहर जा रही थी।

अतः कहा जा सकता है कि पहले जो विजेता आए वे या तो लूट का माल लेकर चले ही गये या फिर वे इस देश के शासक बन गए। जब लूटपाट करके चले गए, तक बेशक उन्होंने भारी घाव किए। लेकिन भारत ने अपने उद्योग के बल पर फिर जीवन पाया और उसके घाव भर गए। जब आक्रमणकारी देश के राजा बन गए तब वे यहीं बस गए। उन दिनों राजा के चरित्र के अनुरूप उसका राज्य कैसा भी रहा हो कम से कम उस समय इस देश से भौतिक या नैतिक सम्पदा को ढो ले जाने का सवाल न था। 24 देश में जो कुछ पैदा होता था वह देश में रहता था, उसकी सेवाओं में जो ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया जाता था वह उसके अपने लोगों में ही रहता था। अंग्रेजों की स्थिति विचित्र थी। जो पहले लड़ाइयाँ चलायी गयी, उनसे सार्वजनिक कर्ज के रूप में भारी घाव लगे, रक्त के निरन्तर प्रवाह से ये घाव बराबर हरे रहते थे और गहरे होते जाते थे। पुराने शासक कसाई जैसे थे, कभी इधर छुरा मारा कभी उधर मारा, लेकिन अंग्रेजों के पास उनका वैज्ञानिक छुरा था और वह सीधा कलेजे तक पहुँचता था और कमाल यह है कि घाव दिखाई नहीं देता। सभ्यता, प्रगति और जाने क्या–क्या, ऊँची–ऊँची बातों का पलस्तर किया जाता था और घाव ढक जाता था अंग्रेज शासक भारत की चौकीदारी करने के लिए सिंहद्वार पर खड़े थे और सारी दुनिया को सुनाकर कहते थे, जो भी आयेगा उससे भारत की रक्षा करेंगे।

निरंकुश राज्यसत्ता में साधारण प्रजा बंधुआ मजदूरों की तरह रहती है। सामन्ती राज्य सत्ता की यही विशेषता है। अंग्रेजों ने अपने मुटठीभर समर्थकों को छोडकर आम जनता को बंधुआ मजदूर बना दिया था। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि गुलाम का दर्जा बंधुआ मजदूर से अच्छा है क्योंकि बंधुआ मजदूर की तुलना में मालिक खरीदे हुए गुलाम का अधिक ध्यान रखता है। औपनिवेशिक शासनकाल में अंग्रेजों का भारत की हर चीज पर कब्जा था। सरकारी अफसरों को छोड दें तो व्यापारी, पूँजीपति, बागान के मालिक, जहाजों के मालिक सभी अंग्रेज थे। परिणामतः भारत की आवश्यकता की सभी वस्तुएं अंग्रेजों के हाथों में थी तथा भारतीयों को बहुत ही कम आमदनी पर काम करना पड़ता था। अंग्रेजों ने इस देश में जो अर्थव्यवस्था चलाई उसमें हिन्दुस्तानियों से काम तो कराया जाता था, परन्तु उनके मेहनत के फल पर उनका कोई अधिकार नहीं था, उसके मालिक थे अंग्रेज। हिन्दुस्तानी मरें तो भले ही मर जाए, इसकी अंग्रेज मालिकों को कोई चिन्ता नहीं थी। इसलिए कहना चाहिए कि अंग्रेजों ने भारत में जो बंधुआ प्रथा चलाई, वह इतिहास में अभूतपूर्व थी। 26 क्रूरता एवं नृशंसता में उसने भारत में मुगल काल में प्रचलित सामन्ती व्यवस्था को भी शिकस्त दे दी। भारत से जो सम्पदा अंग्रेज ढोकर ले जाते थे उसका एक परिणाम था भुखमरी। फलतः अंग्रेजी शासन के दौरान देश में अनेक बार अकालों का सामना करना पड़ा। देश को जिस दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा था उसमें साढ़े सात करोड़ लोग सीधे प्रभावित हुए थे। इस पर भी गोरे अफसरों की रानख्वाह, पेंशन आदि के लिए 18 करोड़ रूपया वार्षिक खर्चे में कोई कटौती नहीं की गई। एक बार की भुखमरी के बाद जब दूसरी बार भुखमरी फैलती थी तब तबाही और भी ज्यादा होती थी। दरअसल भारत में निरन्तर भुखमरी की दशा थी। जब फसल अच्छी होती थी उस समय भी लाखों हिन्दुस्तानी आधा पेट खाकर जीते थे। जब भुखमरी में लाखों लोग मर जाते थे, तब इंग्लैण्ड के लोगों को पता चलता था कि भारत में भुखमरी हैं। भारत से सम्पदा ढोने का काम निरन्तर बढता गया, और उसके साथ ही भूख से मरने वालों की संख्या भी बढती गई।

महाजनी पूँजी के युग में अंग्रेजों ने इस देश में जिस व्यवस्था को कायम किया था, उसे विशुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था नहीं कहा जा सकता था। पूँजीवादी स्वतंत्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा में विश्वास करता है। परन्तु अंग्रेजों ने पूँजीवाद के इस नियम को भारत में कभी लागू होने नहीं दिया। उन्होंने खुली आर्थिक होड़ से भारत के उद्योगों और व्यापार को तबाह नहीं किया, उन्होंने राजनीतिक रूप से भारत पर अधिकार करने के बाद उसका आर्थिक शोषण किया। यहाँ के उद्योगों के विकास को अवरोधित करने के लिए सभी प्रकार के तरीके अपनाये गए कभी उत्पाद शुल्क बढ़ाया गया तो कभी आयात कर की दर नीचे गिराई गई। 28 इस प्रकार अंग्रेजों ने भारत को जिस प्रकार लूटा उसमें और पुराने लुटेरों की लूट में अन्तर था। इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि महमूद गजनवी ने भारत पर अठारह बार हमला किया और उसे लूटा, लेकिन जितना अंग्रेज एक साल में लूट कर ले गए, उतना वह अठारह साल में न ले जा सका था। उसने जो घाव किये उनका सिलसिला अठारहवें आघात के बाद खत्म हो गया, पर अंग्रेजों का घाव करने का सिलसिला जारी रहा। इस शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज तीस लाख ले जाते थे, परन्तु बाद में सालाना तीस करोड़ ले जाते रहे। हिन्दुस्तानी जनता मरें या जियें तीस करोड़ की कीमत का सामान अंग्रेजों के यहाँ पहुँचना ही चाहिए।

लूट के रूप बदलते रहे, परन्तु अंग्रेजी राज में लूट का सिलसिला बराबर चलता रहा। स्वयं गर्वनर जनरल ने अपने दस्तावेजों में लिखा था कि कम्पनी राज में भारी भ्रष्टाचार है तथा उसने भारतवासियों का भारी मात्रा में उत्पीड़न किया है। भ्रष्टाचार एवं उत्पीड़न का यह क्रम उस समय भी निरन्तर चलता रहा जब कम्पनी से शासन शक्ति निकलकर ब्रिटिश क्राउन के हाथों में आ गई। भारत से प्रतिबर्ष तीन से चार करोड़ पौंड़ तक की राशि इंग्लैण्ड जाती रही। निस्संदेह लूट का ऐसा उदाहरण इतिहास में मुश्किल से ही मिलें।

अंग्रेज भारत में पूँजी का निर्यात करते थे। पूँजी के निर्यात का दौर महाजनी पूँजीवाद का दौर है। प्रश्न यह है कि ब्रिटिश पूँजीपतियों के पास निर्यात के लिए पूँजी कहाँ से आयी? उत्तर स्पष्ट है। यह पूँजी वहीं से आयी जहां से

औद्योगिक क्रान्ति के लिए आयी थी। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि ब्रिटिश पूँजीवाद ने भारतीय लूट के बल पर ही औद्योगिक पूँजीवाद की मंजिल में कदम रखा था, उसके बाद उसी लूट के बल पर उसने महाजनी पूँजीवाद के युग में प्रवेश किया था।

हर साल भारत से तीन करोड़ पौंड़ की रकम खींच ली जाती है और बदले में उसे कुछ नहीं मिलता। इस रकम का कुछ हिस्सा भारत वापस आता है, किन्तु भारतीय जनता के लाभ के लिए नहीं। 'वह ब्रिटिश पूँजी के नाम पर वापस आता है। ब्रिटिश पूँजीपति इसका उपयोग भारतीय धरती से उसकी खनिज सम्पदा निकालने के लिए करते है और इस सम्पदा से केवल अंग्रेज समृद्ध होते हैं। इस प्रकार भारत का रक्त बहाया जाता है। और अठारहवीं सदी के मध्य से बराबर बहाया जाता रहा है। 30 बात बिलकुल सही है। ब्रिटिश कम्पनियों ने जब रेले बनाने के लिए यहाँ पूँजी लगायी तब वे अपने लाभ के लिए भारत में लूटी हुई सम्पदा का ही एक हिस्सा लगा रहे थे। इस प्रकार रेल आदि के निर्माण के लिए उन्होंने जो रकम इस देश को उधार के रूप में दी उसके एवज में और ब्याज के रूप में उन्होंने अरबों और खरबों की सम्पत्ति भारत से वसूली है, जबकि उनके द्वारा उधार दिया गया धन कुछ करोड़ों में ही था।

ब्रिटिश इण्डिया से पिछले तीस साल में सालाना ड्रेन तीस लाख पौण्ड का बनता है, बारह प्रतिशत की सामान्य दर से चक्रवृद्धि ब्याज लगाया जाये तो 72 करोड़ 39 लाख की विशाल धनराशि बनेगी। इस निर्मम लूट के सन्दर्भ में औपनिवेशिक काल में भारत की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। देश के साधन इसके कारण बुरी तरह क्षीण होते गए, राष्ट्रीय उद्योग–धन्धों की शिराओं से जीवन रक्त खींच लिया गया और फिर कोई पोषक तत्व उन तक पहुँचने नहीं दिया गया जिससे उसकी कमी पूरी हो सकती। अंग्रेज यहाँ से सोना–चाँदी ढो ले गये। जब अंग्रेजी ड्रेन के लिए भारत के पास सोना–चाँदी नहीं रही तो वह अपनी उपज और दस्तकारी का सामान देने लगा। इस प्रकार दिन–पर–दिन उसकी अपनी संतान का हिस्सा कम होता गया तथा उत्पादन की क्षमता कम होती गयी।

ऊपर कहा जा चुका है कि अंग्रेज अहस्तक्षेप के सिद्धान्त में विश्वास करते थे जिसका अर्थ था कि राज्य को आर्थिक क्षेत्र में अपने हाथ दूर रखने चाहिये परन्तु भारत में उन्होंने कैसे लेसेज फेयर राज्य की स्थापना की थी इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि एक कानून बनाकर राज्य के खर्चे पर उन्होंने सिन्कोना, चाय और कॉफी के बागान को लगाने का निर्णय किया था तथा श्रमिको को न केवल इन बागानों में काम करने के लिए बाध्य किया था बल्कि काम करने से इन्कार करना दंडनीय अपराध घोषित किया था। साम्राज्यवाद का प्रमुख उद्देश्य उपनिवेश की जनता का आर्थिक शोषण होता है। राजनीतिक प्रभुत्व और आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए उन्हें तभी सफलता मिलती जब उनका यहां राजनीतिक अधिपत्य कायम हो जाता है। सम्भवतः उन्हें यह आभास रहा कि वे भारत में अधिक दीर्घ अवधि तक शासन नहीं कर सकेंगे, क्योंकि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लहर भारत में फैले बिना नही रह सकेगी और विदेशी शासकों की यह नीति कभी नहीं रही कि वे भारत में किसी भी प्रकार से उत्पादन क्षमता को बढाने का प्रयास करें। इन सबके परिणामस्वरूप भारतवासियों में विदेशी शासन के प्रति रोष उत्पन्न होने लगा और वे यह प्रतीत करने लगे कि देश के आर्थिक पतन को बचाने का एकमात्र उपाय विदेशी शासन सत्ता से देश को मुक्त कराना है।

निष्कर्ष : –

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि 1857 के काल में भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। भारत के लोग जहाँ ब्रिटिश लूट के कारण दिन पर दिन गरीब होते जा रहे थे, वहाँ उन्हें निर्धन बनाने में अंग्रेजों के भारतीय सहयोगियों की भूमिका भी कुछ कम नहीं थी। जमींदार, सूदखोर, महाजन तथा बड़े नौकरशाह सभी लुटेरे वर्ग में ही शामिल थे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने इन उत्पीडित लोगों को संगठित करके उन्हें वाणी प्रदान की थी। रानी लक्ष्मीबाई ने बहुत ही वीर भाव से झांसी की रक्षा करने का संकल्प लिया। इससे स्पष्ट है कि रानी के मन में बड़ी देशभक्ति थी। रानी लक्ष्मीबाई एक बहादुर और साहसी महिला थीं। भले ही वह बूढ़ा नहीं था, लेकिन उसके फैसले हमेशा परिपक्व थे। वह अपनी अंतिम सांस तक अंग्रेजों से लड़ती रही। उन्होंने उन लोगों के लिए एक आदर्श मिसाल कायम की, जो स्वतंत्रता में हैं। नायक, जो अपने दुश्मनों से कम नहीं थे, उन्होंने खुद स्वीकार किया कि उन्हें सबसे बड़ा खतरा लक्ष्मी बाई से था। वह सबसे साहसी और दृढ़निश्चयी थी। रानी लक्ष्मीबाई ने स्वतंत्रता संग्राम में अपने जीवन का अंतिम बलिदान देकर जनता जनार्दन को चेतना प्रदान की और स्वतंत्रता के लिए बलिदान का संदेश दिया। समाज और राष्ट्र की रक्षा के लिए उनका बलिदान निश्चित रूप से समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक आदर्श पथ्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1ण डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, मीनाक्षी प्रकाशन बेगम ब्रिज, मेरठ, 1991–92, पृ० 10
2ण ए० एल० बाशम : अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ० 102
3ण गोरेलाल तिवारी : बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 52
4ण श्याम रंग मिश्र बुंदेला शूर की कहानी, पृ० 32
5ण अवधेश चतुर्वेदी : 1857 का स्वतंत्रता संग्राम, डायमण्ड पाकेट बुक्स (प्रा०) लि०, नई दिल्ली, 1998, पृ018
6ण गोविन्द सखाराम सरदेसाई मराठों का नवीन इतिहास, तृतीय खण्ड, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1972, पृ० 30

7ण अवधेश चतुर्वेदी भारत का स्वाधीनता संग्राम, पृ० 92
8ण वीर विनायक दामोदर सावरकर भारमीय स्वतंत्रता समर, पृ० 121
9ण दीवान प्रतिपाल सिंह बुंदेलखण्ड का इतिहास, पृ० 199
10ण केशवचन्द्र मिश्र भारत भूमि और उसके निवासी, पृ० 156
11ण डॉ० वृन्दावन लाल वर्मा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृष्ठ 8
12ण डेविड, शाऊल (2003), द इंडियन म्यूटिनीः 1857, पेंगुइन, लंदन 367